हिंदी समीक्षा की अंतर्दृष्टि और उसका प्रभाव

*डॉ.अजय कुमार श्रीवास्तव

सार

समीक्षा साहित्य के अंतरंग संबंधों को उद्घाटित करने ,उसके गुण दोषो को रेखांकित करने तथा वास्तविकता से रूबरू कराने का महत्त्व पूर्ण माध्यम है I समीक्षा के माध्यम से साहित्य को जीवन की प्रासांगिकता से जोड़ने और उसका भरपूर उपयोग करने की सीख मिलती है I साहित्य कब कैसे समाज को नेतृत्व देता है? और समाज को उदात्त परिवेश में ढालने के लिए क्या क्या कर सकता है ? यह साहित्य की सम्यक समीक्षा द्वारा ही संभव हो पाता है ,इसी लिए एक अच्छा साहित्य समय की कसौटी पर हमेशा खरा उतरता है और समाज को सही दिशा भी प्रदान करता है I तभी वह समाज के दर्पण के साथ समाज का कुम्हार भी होता है I इतिहास साक्षी है जब जब मनुष्य असहाय होता है ,निराश होता है ,दुःख से पीड़ित होता है तब तब साहित्य उसे अँधेरे से लड़ने तथा आशावादी होने की ताकत प्रदान करता है I,और यह ताकत उसमे छिपी हुई समीक्षा शक्ति के अवगाहन से प्राप्त होती है I

प्रमुख शब्द :- समीक्षा ,मानदंड ,निष्कर्ष ,कसौटी ,साहित्य ,समाज ,नेतृत्व , अनुभूति ,सौंदर्य ,अन्योन्याश्रित I

समीक्षा साहित्य का मानदण्ड है। अतीत की स्मृतियों का पावनतम एवं सुरुचिपूर्ण व्यवस्था की द्योतक समीक्षा साहित्य के इतिहास में अथवा समाज के प्रतिमान या फिर जीवन की व्यवस्था का नियमीकरण समीक्षा है। वर्तमान की क्रोड़ से भविष्य की सुन्दर कमनीयता तथा धैर्य की प्रवृत्ति का द्योतक समीक्षा है। किसी भी वस्तु को जब हम देखते हैं, तब उसके रूप, रंग, गुण, कर्म, स्वभाव, आकार-प्रकार और प्रभाव आदि पर विशेष रूप से ध्यान देते हैं। उसमें उसकी भीतरी-बाहरी दोनों विशेषताओं को देखकर ही उसके विषय में अपना निष्कर्ष प्रतिपादित करते हैं। ऐसा करना न केवल उस वस्तु के विषय में जानकारी प्राप्त करना है वरन् उस वस्तु साथ-साथ अपने दृष्टिकोण का भी, अपने रुझान का भी पता चलता है। समीक्षा अपने इसी दृष्टिकोण का उस वस्तु के प्रति सम्यक् परीक्षण का समीचीन मानदण्ड है। वह उस वस्तु की सारगर्भित परन्तु जीवंत तत्वों को रूपायित करने एवं उससे जीवन की सारग्राहिता का नाम समीक्षा है। समीक्षा और वस्तु दोनों का अन्योन्याय सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को शरीर आत्मा के सम्बन्धों की तरह देखा जा सकता है। यदि वस्तु ही नहीं तो समीक्षा किसकी? और यदि समीक्षा नहीं तो कृति के मूल तत्व की पहचान कौन करेगा? उसके अस्तित्व का आधार क्या होगा?

* एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय शिक्षा कॉलेज,चंडीगढ़ I

साथ ही साथ उसके देखने समझने की दृष्टि का अंदाजा कैसे लग पायेगा? निश्चित तौर पर समीक्षा उपरोक्त प्रश्नों का समाधान के लिए ही आवश्यक मानी जाती है। समीक्षक अपनी सूक्ष्म दृष्टि से एक नवीन पथ का अन्वेषण करता है। समालोचक किसी भी वस्तु का मलीभाँति ज्ञान प्राप्त करके ही अपना मत स्थिर करता है। वह वस्तु क्या है? उसकी उत्पत्ति कब और कैसे हुई है। उसके स्वभाव क्या हैं? कहाँ तक वह उपयोगी है। उससे हमारा क्या सम्बन्ध है? इत्यादि बातों का जानना हमारी इच्छा की पूर्ति के लिए आवश्यक हो जाता है।

कभी-कभी उस वस्तु की तुलना भी उससे समानता रखने वाली किसी दूसरी वस्तु से करनी पड़ती है और अपना मत स्थिर करना पड़ता है। इस प्रकार समीक्षा कृति को परत दर परत नंगा करती है, उसके एक-एक परत की कुरेद कर उसके मूल तत्व की खोज करती है। वह उसकी का पता करती है। इस कार्य में वह कृति के अतीत, वर्तमान, भविष्य तीनों से उसके अस्तित्व का मानदण्ड स्थापित करती है। वह उसका निरीक्षण ही नहीं करता वरन् परीक्षण करके निर्णय करना भी उसका मुख्य उद्देश्य है। समीक्षक की अपनी दृष्टि के साथ-साथ उस वस्तु की मूल दृष्टि का उचित सामंजस्य ही समीक्षा है। इस-समीक्षात्मक दृष्टिकोण में रचना का उद्देश्य भी समाहित होता है। कोई भी समीक्षक या कलाकार इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। यह रचना को अपनी दृष्टि से बाँधता है तथा उसका प्रतिमान निर्धारित करता है। वह इसकी अवहेलना करके कभी भी अपने समीक्षात्मक दायित्व को पूरा नहीं कर सकता । साहित्य मानव के यथार्थ सत्य में छिपे हुए आत्मा के सौन्दर्य को खोजकर, भाव के माध्यम से विचार-समन्वय करके प्रस्तुत करना है। इस उद्देश्य को साहित्य तभी प्राप्त कर सकता है जब वह युग के प्रति ईमानदार हो, और बहुजन हिताय ही अपना समर्पण करे। साहित्य रचना, गम्भीर दायित्व के साथ मानव अनुभूति का परिष्कार भी है। यह दायित्व कलाकार के व्यक्तित्व से तब उत्पन्न होता है जब उसकी मर्यादा बँधती है। जब वह समाज के विविध रूपों के सम्बन्ध में आता है।1 साहित्य की रचना में उसका युग स्पंदित होता है वह युग विहीन नहीं हो सकता। उसका जुड़ाव या उसके अस्तित्व की परख उसके सारतत्व का मूल्यांकन उस युग में घुस कर उस युग के मानदण्डों के माध्यम से ही हो सकता है। यदि ऐसा नहीं होता तो समीक्षक न केवल उस रचना के प्रति अन्याय करता है वरन् वह स्वयं अपने साथ-साथ उस युग पर भी अन्याय करता है। वह उस युग में अपने को तथा अपनी आत्मा को पैठाकर ही रचना का वास्तविक मानदण्ड स्थापित कर पाता है। रचनाकार स्वयं एक समीक्षक होता है वह अपनी अनुभूति के प्रति जितनी ज्यादा ईमानदारी बरतेगा तथा जितना ही आडम्बर विहीन होगा वह उतना ही सफल समीक्षक भी होगा। रचनाकार के अनुभूति की सही पकड़ ही सच्ची समीक्षा है। साहित्यकार या कलाकार की समीक्षा उसकी अपनी अनुभूति का सच्चा सच्चा प्रकटी-करण है। इसके साथ-साथ युग

से जुड़ाव तथा रचना के दायित्व का जुड़ाव भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। समीक्षा जहां निर्पेक्ष एवं सम्यक् दृष्टिकोण रखती है, वहीं उसकी सापेक्षता भी आवश्यक है। निर्पेक्ष मानव अर्थहीन है, सापेक्ष मानव ही बाह्य मर्यादा को मानव मात्र में निर्वासित समान भाव भूमि पर परखता है और उसे साहित्य में प्रकट करता है, उसका केन्द्र और उसकी व्याप्ति व्यक्ति और समाज का पूर्ण समन्वय है।२ समीक्षा और समीक्षक दोनों का मूल उद्देश्य व्यक्ति और समाज का पूर्ण समन्वय है। समाज के बिना व्यक्ति का अस्तित्व नहीं है। समाज व्यक्ति की आत्मा में, उसकी सोच में, उसकी क्रियाओं में खाद पानी की तरह रचा-बसा है। इसलिए कोई समीक्षक या रचनाकार समाज की उपेक्षा नहीं कर सकता। वह समाज में रहता है। साहित्य, समाज और व्यक्ति दोनों है। इसलिए साहित्य समाज तथा व्यक्ति से इतर नहीं है। समीक्षक का कार्य साहित्य और समाज को युग परिवेश के अनुरूप पूर्ण समन्वय करने में है और उसके विलय का अस्तित्व उसके निखरे नये समाज के रूप में अवतरित होना चाहिए। किसी भी युग का साहित्य उस समय के संसार एवं समाज के प्रति प्रचलित धारणाओं सेअछूता नहीं रहता। साहित्यकार संसार और समाज के प्रति कोई न कोई दृष्टिकोण अपनाये बिना तो रचना कर ही नहीं सकता।3 समीक्षक जीवन की प्रत्येक पगडंड़ी पर इसका मान रखता है कि उसका भी अस्तित्व किसी के अस्तित्व के आधार पर ही टिका है। वह जिस घरातल पर अपनी ऊर्जस्विता को अपनी समीक्षा में स्थापित करता है वह धरातल भी उसे अपने ही खून पसीने से जोड़ती है। रचनाकार अपने युग से प्रभावित होता है तो समीक्षक भी अपने युग से प्रभावित रहता है। वह अपनी तूलिका से अपने परिवेश को ही परोक्ष रूप से रचना की समीक्षा के माध्यम से जोड़ता घटाता है। समाज को भी उसके दायित्व का बोध होना चाहिए। समीक्षक यदि समाज से जुड़ा है, समाज का ख्याल रखता है तो समाज के अन्दर भी ऐसी दृष्टि होनी चाहिए जो उसकी समीक्षा पर गौर कर सके। समाज को चाहिए कि समीक्षक द्वारा दिए गये निर्णय का मूल्य निर्धारित करने तथा उन्हें प्रामाणिक समझने में दोनों का सरोकार एक ही प्रकार हो। सभ्य समाज के लिए दोनों का महत्व समान है और दोनों का दायित्व भी समान है।४ किसी भी देश का साहित्य उसकी स्थायी सम्पति होती है। यह साहित्य ही किसी देश, जाति तथा उसकी जिविका का दर्पण होता है। समीक्षक उस देश-जाति के साहित्य को परखने की दृष्टि देता है। वह जितना ही सत्यान्वेषण करेगा वह उतना ही उस देश की संस्कृति तथा उसकी अस्मिता को महान बनायेगा। समीक्षक का प्रमुख दायित्व सत्य की खोज करना है। वह किसी भी रचना या कृति की समीक्षा करते समय इसी बात की खोज करता है। वह इस प्रयोग से केवल उस कृति का मूल्यांकन ही नहीं करता है वरन् वह उस देश को भी नवीन तथा सही दिशा की ओर अग्रसर करता है। समीक्षक ही अपनी प्रतिमा द्वारा युग का निर्माण करता है, इतिहास का निर्माण करता है न जाने कितने युगों को मिटाता है और न जाने कितने नवीन युगों को जन्म देता है। समीक्षक वह ताकत है जो किसी भी देश की

जातीय सातत्यता को निखारते हुए उसे इतनी ऊँचाई पर ले जाता है कि जहाँ वह अपने अतीत को निहारता है तो उसमें अपनी धँसी हुई जड़ों की थाह ही नहीं पाता। वह बताये की कृति सत्य की जितनी गहराई पर जमी होती है, वह देश उतना ही स्थिर, शक्तिशाली, गौरव सम्पन्न तथा प्रफुलित रहता है। समीक्षा साहित्य की चेतना है जैसे साहित्य जीवन की समीक्षा है, चेतना है, साहित्यकार जीवन की अनुभूतियों का मापन करता हुआ उन्हें कलात्मक रूप प्रदान करता है। समीक्षक उन कलात्मक अनुभूतियों का मापन करता हुआ उन्हें मूल्यात्मक निर्णय बिन्दु पर प्रतिष्ठित करता है।५ आचार्य शुक्ल इसी बात को लोकमंगल की दृष्टि से देखते हैं, वह तुलसी की सुरसरि के समान रचनाधर्मिता को मूल मानते हैं और इसी निष्कर्ष पर वे रचनाधर्मिता का निर्णय देते हैं। लगभग बीसवीं शताब्दी के मध्यकाल से समीक्षा दृष्टि में व्यापक परिवर्तन आ जाता है तथा अब तक समीक्षा को लोकवादी प्रतिमान से अलग नितान्त वैयक्तिक प्रतिमान का प्रादुर्भाव हुआ। इस विचार का उद्भव बहुत पहले कला-कला के लिए नामक सिद्धान्त से हो चुका था। तात्पर्य है कि कृति की समीक्षा नितान्त वैयक्तिक रूप में ही किया जाय अर्थात् कृति तथा कृतिकार की अनुभूति को सम्यक परीक्षण न कि उस कृति को सामाजिक निकष पर कसा जाय। कृति का विशुद्ध अनुभूति का मूल्यांकन विशुद्ध निर्पेक्ष पर रखा जाय इसी समीक्षा का शुभारम्भ हिन्दी आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी जी के द्वारा उनकी कई पुस्तकों में दिखलाई पड़ता है। इन्होंने (बाजपेयी) एक निजी जीवन दर्शन और भाव-सम्पदा उद्घाटित करने का प्रयास किया।६ वह मूलरूप से कवि की कृति की समीक्षा कवि की अन्तर्वृद्धियों के सम्यक् विश्लेषण के माध्यम से करते हैं तथा ऐसी बात नहीं कि अपने इर्द गिर्द फैली विसंगतियों को अनदेखा कर जाते हैं वरन उनका परिष्कार करते हुए वह स्वस्थ साहित्यिक प्रवृतियों को पुष्ट करते हैं तथा दूषित प्रवृतियों को नियन्त्रित करने का भी प्रयास किया।७ आचार्य बाजपेयी जी समाज के प्रति पूरा ध्यान रखते हैं पर वह कवि के साथ न्याय करना नहीं भूलते । वह किसी भी कृति का मूल्यांकन समाज की परिधि में न देखकर पहले वह कृतिकार की परिधि में ही देखना चाहते हैं। परन्तु वह सामाजिक परिवेश को नकारते नहीं वरन उसे भी पर्याप्त महत्व देते हुए उसमें फैली कुरीतियों को निष्कासित करते हुए साहित्य के परिष्कार के माध्यम से समाज का परिष्कार करते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी समन्वयवादी समीक्षक हैं। वे भारतीय संस्कृति एवं भारतीय अस्मिता की प्रतिष्ठा के साथ-साथ वर्तमान से उसका उचित सामंजस्य भी निरूपित करते हैं। हिन्दी साहित्य की भूमिका में उनके द्वारा समीक्षा की ऐतिहासिक पद्धति की प्रतिष्ठा की गई है। आचार्य द्विवेदी जी भारतीय संस्कृति के अनन्य पोषक हैं इसलिए उन्होंने समीक्षा को उसी बिन्दु पर देखा है। उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि किसी ग्रन्थकार का स्थान

निर्धारित करने के लिए क्रमागत सामाजिक, सांस्कृतिक एवं जातीय सातत्य को देखना आवश्यक है जिसके लिए आलोचक को अपनी जातीय परम्परा या सांस्कृतिक विरासत का पर्याप्त बोध होना चाहिए।7 आचार्य द्विवेदी जी ज्ञान और पांडित्य से पूरी तरह से आप्लाक्ति हैं वे किसी तथ्य को स्थापित करते समय उसकी तह तक जाते हैं और उसे प्राय: समान शास्त्रीय एवं सांस्कृतिक ढंग से रूपायित करते हैं। इसमें वे मनोवैज्ञानिकता का पूरा समावेश भी कर जाते हैं। वह मानवतावाद तथा समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के कारण अपने पांडित्य की दुरूहता को आड़े नहीं आने देते। हिन्दी साहित्य की भूमिका में प्रकाशक नाथूराम प्रेमी जी ने उनकी समीक्षा दृष्टि को उद्घाटित करते हुए लिखा है - प्रत्येक देश का साहित्य, समाज संस्कृति और चिन्तन एक अविच्छिन्न विकास परम्परा का और उसमें होने वाली क्रिया-प्रतिक्रियाओं का प्रतिबिम्ब हुआ करता है जिसे गति देने में भौगोलिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक एवं वैयक्तिक कारण काफी हिस्सा लेते हैं। जब तक इन बातों का ज्ञान नहीं होता तब तक साहित्य के इतिहास को पढ़ने का डिक्शनरी को याद करने की अपेक्षा अधिक मूल्य नहीं हो सकता।8 इस आधार पर आचार्य द्विवेदी जी अपनी पूर्ववर्ती समीक्षा परम्परा का भी ध्यान रखते हुए अपनी विरासत को निखारने का निरन्तर प्रयास करते हैं। इससे वह एक ओर तो आचार्य शुक्ल के निकट आ जाते हैं दूसरी ओर भारतीय संस्कृति के उत्थापकों में से एक हो जाते हैं। मानवीय मूल्यों में इतनी महान आस्था उनके पूर्व किसी आलोचक की कृतियों में परिलक्षित नहीं होती है। उनकी अनेक रचनाओं -- कबीर, सूर-साहित्य, हिन्दी साहित्य की भूमिका आदि में उनकी इस विचारधारा को देखा जा सकता है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में कृतियों या कृतिकारों का मूल्यांकन मानवतावादी दृष्टिकोण से किया। उन्होंने अशोक के फूल नामक निबन्ध संग्रह में मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है का सिद्धान्त ही निरूपित कर दिया। वह साहित्य को मनुष्य के लिए मानते हैं। उनकी समीक्षा का यही मेरुदण्ड है। द्विवेदी जी साहित्य को सामाजिक सन्दर्भों में देखने परखने का आग्रह करते हैं। सामाजिकता का यह आग्रह ही उन्हें मानवतावादी बनाते है। वे जीवन्त मनुष्य और उसके समूह समाज को मनुष्य की सारी साधनाओं का केन्द्र और लक्ष्य मानते हैं। वे जिस युग के साहित्य की विवेचना करने में प्रयुक्त होते हैं-- उस युग के समूचे मनुष्य उसकी समस्त साधनाओं को समझ लेना चाहते हैं। मनुष्य समझ आ गया तो साहित्य को समझने में देर नहीं लगेगी। मानवता के इतिहास का बोध उसकी विकास यात्रा के बिना हो ही नहीं सकता। द्विवेदी जी इसी विकास यात्रा की मनुष्य की जय यात्रा कहते हैं।९ आचार्य द्विवेदी जी ने इसी बात को अपने निबन्ध संग्रह अशोक के फूल में बहुत स्पष्ट शब्दों में लिखा है -- मनुष्य की जय यात्रा में गंगा के समान अबाधित अनाहत धारावाली मनुष्य की दुर्दम विजिविषा में विश्वास रखने वाला चिन्तक प्रगतिशीलता में भी विश्वास रखेगा।१० डॉ0 नगेन्द्र जी ने हिन्दी समीक्षा को उसके समस्त अगों उपांगों से प्रभावित किया तथा उसका संवर्धन व पोषण

भी किया है। वह मूलत: रसवादी आलोचक रहे हैं। वह किसी भी कृति की समीक्षा करते समय कृति एवं कृतिकार के मानस में पूरी तरह घुस जाते हैं। वह उसके अन्तर्मन की उस भावनाओं का पूरा-पूरा आस्वाद भी ग्रहण करते हैं जो कृतिकार कहना चाहता है अथवा जो नहीं कह पाया है। प्रत्येक सिद्धान्त को विवेचित करने में इन्होंने आधुनिक मनोविज्ञान एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों का यथोचित उपयोग नि:सन्देह किया है।११ नि:संकोच डॉ0 नगेन्द्र कृति एवं कृतिकार को भारतीय शास्त्रीयता एवं आधुनिक मनोविज्ञान दोनों कसौटी पर रखकर उसकी समीक्षा करते हैं । वह मानव मन की अतल गहराइयों में पैठकर न केवल उन संवेदनाओं को देखते हैं वरन् वह अपनी बात को इस ढंग से सुलझा कर प्रस्तुत करते हैं कि कृतिकार की भावनाओं का सम्यक् स्पष्टीकरण भी हो जाय और कृतिकार के प्रति अपनी सहानुभूति भी उड़ेलते जाते हैं। निभ्रान्त ढंग से अपनी बात बलपूर्वक कहना डॉ0 नगेन्द्र की शैली का वैशिष्ट्य है। उनके पास सुचिन्तित तर्क पाश होता है और वे सबके बाद एवं तर्कों से आगे बढ़ते जाते हैं तथा अपना मत दृढ़तापूर्वक प्रकट करते हैं। उनके मत और उनकी धारणा में मतभेद हो सकता है लेकिन उनका इसका ढंग गम्भीर होता है।१२ यदि बाजपेयी जी द्विवेदी जी और डॉ0 नगेन्द्र की आलोचनाओं के वृत्त बनाये जायें तो बाजपेयी जी की स्थिति मध्यवर्ती ठहरती है। उनकी वृत्त परिधि एक ओर द्विवेदी जी की वृत्त परिधि का स्पर्श करती है तो दूसरी ओर नगेन्द्र जी का । द्विवेदी जी तथा नगेन्द्र जी की परिधियां एक दूसरे को छूती रह जाती हैं। द्विवेदी जी की मानवतावादी समीक्षा में साहित्येतर तत्वों की बहुलता है। वाजपेयी जी साहित्यिक मूल्यों पर बल देते हुए भी यथास्थान साहित्येतर मूल्यों का प्रयोग करते हैं किन्तु नगेन्द्र जी एकान्तत: साहित्यिक समीक्षा सिद्धान्तों के पक्षपाती हैं। साहित्येतर मूल्यों से उनका सम्बन्ध प्राय: नहीं है।१३

डॉ0 नामवर सिंह प्रगतिशील आलोचना के मूर्धन्य समीक्षक रहे हैं। डा. राम विलास शर्मा से प्रारम्भ की गई प्रगतिशील आलोचना (मार्क्सवादी आलोचना) को सक्रिय रूप से जीवित रखने के लिए और हिन्दी भाषा को हर दृष्टिकोण से सुसम्पन्न बनाने के लिए डॉ0 नामवर सिंह का योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण है। डॉ0 नामवर सिंह जी ने प्राचीन और नवीन साहित्य का अध्ययन किया तथा अपनी समीक्षा का भी श्री गणेश हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान नामक पुस्तक से प्रारम्भ किया। नामवर सिंह ने हजारीप्रसाद की तरह ही मानवतावादी दृष्टि को ही अपना आधार बनाया है पर द्विवेदी जी की तरह वह उसका उपयोग मानव मात्र के लिए नहीं वरन मानव के एक पक्ष के लिए ही करते हैं। वह कृतिकार की या सर्व की सर्जना को उसकी व्यापक फलक तथा गहराई से जोड़ते हैं। वह किसी भी कृति की उपलब्धि में अनुभूति की व्यापकता और गहराई दोनों को समान महत्व देते हैं। उन्हीं के शब्दों में-- अनुभूति की शक्ति केवल तीव्रता में नहीं बल्कि स्थायित्व में ही होती है। और स्थायित का

आधार वस्तुत: व्यापक मानवीयता ही है। जब किसी अनुभूति को हम गहरी कहते हैं तो उसे मानवीय कहते हैं और मानवीयता से व्यापकता खारिज नहीं है। मतलब यह कि मानवीयता की व्यापक भूमि पर ही कोई अनुभूति गहरी हो सकती है।१४ वह किसी भी समरूप को मानवीय फलक पर बहुत व्यापक रूप में प्रस्तुत करते हैं साथ ही वे यह भी देखते हैं कि इस समस्या के समाधान में मानवीय हित की कितनी व्यापकता विद्यमान है। वह किसी भी कृतिकार की कृति की समीक्षा अनुभूति की तजन्यता एवं उसके मीटर गर्हित गवेषणात्मक मांगलिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि पर करते हैं। उनका दृष्टिकोण सर्वहारा वर्ग या गरीब जनता से सीधा जुड़ता है। इसके लिए वह उस परिवेश के यथार्थ रूप में घुस कर उसके अनुभव एवं आस्वाद की बात करते हैं। उन्हीं का कथन है-व्याप्त परिवेश में और ऊंचे स्तर पर किसी समस्या को परखने का कार्य वही लेखक कर सकता है जिसका सम्बन्ध अधिक से अधिक व्यापक सामाजिक परिवेश से हो और इस सम्बन्ध के विषय में जिसकी समझ का स्तर भी काफी ऊंचा है। बड़ी मोटी बात यह है कि अपने बारे में ठीक से जानने के लिए अपने से सम्बन्धित दूसरे लोगों के लिए भी जानना जरूरी है।१५ कृतिकार या समीक्षक का दायित्व है कि पहले वह अपने बारे में ही जान ले कि वह कितना यथार्थ तथा कितना निष्पक्ष एवं निर्ग्रन्ध है और इस स्थिति को तभी माप पायेगा जब जिस किसी भी सामग्री को अपनी रचना में रूपायित कर रहा है उसे वह दूसरों के निकट लाने में कितना सक्षम है। सबसे पहले समीक्षक अपना हृदय ही उद्घाटित करता है। लेकिन हृदय के माध्यम से क्या उद्घाटित करता है इस पर नामवर जी का कथन है- कुछ साहित्यकार ऐसे हैं वो अपने मन की गाँठे खोलते हैं, मन की एक- एक पर्त खोलकर रख देते हैं। चेतन की सतह के नीचे अवचेतन में, पड़ी हुई बहुत सी बात को खोलना ही उनके लिए सबसे बड़ा उद्घाटन कार्य है। दूसरी ओर ऐसे भी लेखक हैं जो अपने मन के साथ जुड़े हुए सैकड़ों दूसरे मनों का उद्घाटन करते हैं। इस तरह वे अपने मन के द्वंद्व का उद्घाटन करते-करते उस युग के पूरे समाज के संघर्ष को खोलकर रख देते हैं।१६ दोनों की बात अन्तत: सामाजिक परिवेश पर लागू होती है। एक अन्तश्चेतना द्वारा समाज को ही व्यक्त करता है फिर भी सामाजिक पृष्ठभूमि में थोड़ी सी फिसलन जरूर बढ़ जाती है। और कृतिकार या समीक्षक दोनों एक दूसरे के विपरीत दिशा का अनुगमन करने लगते हैं। यथार्थत: समीक्षक का अहं या उत्स उसे जीवन की गहराई के साथ-साथ उसका सही अथवा सम्यक् पथानुशीलन भी है जिस पर सामाजिक एवं अन्तश्चेतित मन की ऐक्यता का ही बोध हो। नदी के दोनों कगारों के बीच यदि साहित्यकार एवं समीक्षक अलग-अलग राग अलापेगें तो समीक्षा की इति श्री हो जायेगी। समीक्षा मानवीय संवेदनाओं मानवीय मूल्यों का स्थायीकरण है। जिससे नवीन चिन्तन की पिपासा को जागरण के साथ युग के बहाव की दिशा का मी ध्यान रखना पड़ेगा। अतीत की परम्परायें हमें सुनियोजित करती हैं परन्तु जरूरी नहीं है कि वह समसामयिक युगों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल सकें।

इसलिए किसी भी समीक्षक का दायित्व यह है कि वह अतीत की उपेक्षा न करते हुए अतीत से आवश्यक तन्तुओं को चुन कर वर्तमान की क्रोड़में उनका पल्लवन करे जिससे वह अपने गौरवशाली धरोहर के साथ-साथ वर्तमान का भी संरक्षण कर सके। डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी के शब्दों में-- डॉ0 नामवर सिंह सम सामयिक साहित्य रचना का महत्व मानकर आलोचना कार्य में प्रवृत रहने वाले आलोचक है। जो लोग केवल महान साहित्य पर ही कलम चलाते हैं वे बहुत जल्द जड़ हो जाते हैं। यदि अपने सम सामयिक साहित्य का अध्ययन नहीं करते, उसमें रुचि नहीं रखते और उससे भाग कर अपनी दृष्टि निर्मल नहीं रखते किसी युग के साहित्य को नहीं देख सकते। इस दृष्टिकोण से डॉ0 नामवर सिंहं सम सामयिक रचना जगत के लिए सन्दर्भवान आलोचक हैं। १७

इधर कुछ वर्षों से भारतीय साहित्य के फलक पर फ्रायड का मनोविश्लेषणवाद भी दिखलाई पड़ता है। जिसमें प्रमुख समीक्षक डॉ0 देवराज उपाध्याय, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी का विशेष स्थान है। वह कृति की समीक्षा उसमें निहित कृतिकार की वर्जनाओं, कुंठाओं तथा वीभत्स वासनाओं का भंडारागार मानते हैं। उनके अनुसार कृतियाँ मनुष्य की वर्जनाओं, कुंठाओं का सबलतम एवं सच्ची निष्काशन हैं। अज्ञेय कृत त्रिशंकु, इलाचन्द्र जोशी का साहित्य सर्जना, विवेचना, साहित्य संतरण, विश्लेषण एवं साहित्य चिन्तन तथा डॉ0 देवराज उपाध्याय की पुस्तक आधुनिक हिन्दी तथा साहित्य और मनोविज्ञान में मनोविश्लेषणात्मक पृष्ठभूमि पर समीक्षा की गयी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

१. डॉ. रागेय राघव: समीक्षा और आदर्श, पृष्ठ 35
२. डॉ. रागेय राघव: समीक्षा और आदर्श, पृष्ठ 35
३. डॉ. रामबिलास शर्मा: लोक जीवन और साहित्य, पृष्ठ 13
४. डॉ. जगदीश प्रसाद महेन्द्र: समीक्षात्मक निबंध संग्रह पृष्ठ 3
५. डॉ. सभापति मिश्र: हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास, पृष्ठ 359
६. वही, पृष्ठ 360
७. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 2
८. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 1
९. डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी: हिन्दी आ्लोचना, पृष्ठ 151

१०. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: अशोक के फूल, पृष्ठ १०

११ डॉ. सभापति मिश्र: हिन्दी साहित्य का प्रवृत्ति परक इतिहास, पृष्ठ ३५९

१२ डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी: हिन्दी आलोचना, पृष्ठ 163

१३ डॉ. नगेन्द्र: हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 702

१४ डॉ. नामवर सिंह: इतिहास और आलोचना, पृष्ठ 12

१५ डॉ. नामवर सिंह: इतिहास और आलोचना पृष्ठ 13

१६ वही ,, ..पृष्ठ 15

१७ डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी: हिन्दी आलोचना, पृष्ठ 207